# अवतारी पुरुष आचार्य तुलसी

–डॉ. सोहनराज तातेड़

आचार्य तुलसी का जन्म नागौर(राजस्थान) जिले के लाडनूं नगर में सन् 1914 में खटेड़ (ओसवाल–जैन) परिवार में हुआ। ग्यारह वर्ष की अल्प आयु में उन्होंने सन्यास के विकट पथ पर चरणन्यास किया। 22 वर्ष की अवस्था में एक विशाल धर्मसंघ का नेतृत्व संभाला। 33 वर्ष की अवस्था में देश में चारित्रिक एवं नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा हेतु अणुव्रत आंदोलन का प्रवर्तन किया। उनके फौलादी व्यक्तित्व ने विकास के अनेक नये क्षितिज उन्मुक्त किए जैसे – अणुव्रत, नया मोड़, आगम–सम्पादन, समण दीक्षा, अहिंसा सार्वभौम, प्रेक्षाध्यान, जीवन–विज्ञान आदि। लगभग 60 वर्ष तक उन्होंने नेतृत्व को साधना का कार्यक्षेत्र बनाया और कुर्सी के आपाधापी के युग में पद–विसर्जन कर निष्काम साधना की जीवन्त मिशाल कायम कर दी।

साहित्यकार कानुप्रिया के शब्दों ''आचार्य तुलसी व्यक्तित्व नहीं बल्कि एक विशाल सांस्कृतिक संस्था है। उनका तेजस्वी व्यक्तित्व अब एक गौरवपूर्ण प्रतिष्ठान बन गया है।[1] गुरुदेव तुलसी ब्रह्मर्षि थे क्योंकि उन्होनें साधना के नये–नये प्रयोगों का आविष्कार किया। वे देवर्षि थे क्योंकि वे सबको ज्ञान का प्रकाश बांटते थे। वे राजर्षि थे क्योंकि वे एक विशाल धर्मसंघ के अनुशास्ता थे तथा वे महर्षि थे क्योंकि वे सतत् महान् की खोज में प्रयत्नशील रहे। आचार्य तुलसी अप्रतिम और अलौकिक व्यक्तित्व के धनी थे। डा. निजामुद्दीन के शब्दों में–''धवलकेश, गौर वर्ण, सत्य और तेज से प्रदीप्त विशाल नेत्र, भव्य प्रशस्त मस्तक, प्रसन्न स्मित बदन, आत्मीयता के सागर, समभाव के साधक, सहजता की मूर्ति, युग के तत्ववेता, मानवता के मसीहा, राष्ट्रीय चेतना के प्रहरी, अणुव्रत के प्रर्वतक, मृदुभाषी, अनुशासन में डूबा व्यक्तित्व और अध्यात्मज्योति – यह है प्रथम दर्शन में आचार्य तुलसी का भव्य व्यक्तित्व।[2]

भूतपूर्व लोक सभा अध्यक्ष शिवराज पाटिल के शब्दों में ''संसार के पूर्णत्व को जो प्राप्त है, उन इने गिने व्यक्तियों में एक नाम गुरुदेव तुलसी का है, ऐसी मेरी मान्यता है। गुरुदेव तुलसी अध्यात्म के शिरोमणि थे।[3] दक्षिण यात्रा के दौरान जब आचार्यश्री तुलसी महर्षि रमण के आश्रम में पहुंचे तो वहां एक साधक ज्योतिष् विद्या का ज्ञाता था। आचार्यश्री तुलसी के चित्र को देखकर वह उनके पास आया। आचार्यश्री के भव्य व्यक्तित्व के बारे में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उसने कहा–''आपके विशाल कान दिव्य हैं, ऐसे कान वर्तमान में लाखों व्यक्तियों में कहीं नहीं देखे। इनकी आकृति से आपके दिव्य व्यक्तित्व का पता लगता है। आपके चक्षु अत्यन्तः तेजस्वी और अलौकिक है इनसे अमृत वरसता है, जो एक महान् आत्मा के अवतरण के प्रतीक हैं। हाथ की मुद्रा और रचना विश्व को आर्शीवाद देने की सूचक है। आपका हृदय पवित्र और विशाल है। हृदय की एक ग्रन्थि जरूर छोटी है पर अब उसका भी क्रमशः विकास हो रहा है। आपके द्वारा विश्व का कल्याण होगा।[4]

आचार्य तुलसी साधकों को आत्म युद्व की प्रेरणा देते हुए कहा करते थे–''मनुष्य में ऐसी क्षमता है, वह आत्म युद्व करके चेतन्य का अनुभव कर सकता है। जो साधक अपने विजातीय तत्वों से लड़ना नहीं जानता वह साधक अर्न्तयात्रा की और प्रस्थान नहीं कर सकता। अपनी आत्मा पर विजय पाने वाला समूचे संसार का विजेता बन जाता है। तीर्थंकर के सम्पादक डा. नेमीचंद जैन उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व का रेखांकन करते हुए कहतें हैं–धर्म के दरवाजों, खिडकियों और उजालदानों को खोलने तथा ताजगी को भीतर आने की अनुमति देने का काम आचार्य तुलसी ने किया। उन्होंने धर्म को किसी एक बाड़े में कैद नहीं होने दिया वरन् उसे स्वाधीन पक्षी की तरह पंख पखारने का हर मौका दिया।[5] आचार्य तुलसी कहते थे कि साधना का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए–आत्मबोध एवं आत्मोदय। मेरे सामने अनेक कार्य हैं लेकिन सबसे

प्रथम कार्य है–व्यक्तिगत साधना। मैं कहीं भी रहूं और कुछ भी करूं, इस लक्ष्य को विस्मृत नहीं कर सकता। आचार्य तुलसी के महनीय व्यक्तित्व का रेखांकन प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेद्रजी के शब्दों में उल्लेखनीय है –''मैं लेखक हूँ। कलम चलाना मेरो काम है। मुझमें मानसिक स्वतंत्रता है अतः किसी के प्रति सहज झुकने को तैयार नहीं हूँ। इन सबके बावजूद आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व के प्रति मेरी सच्ची आत्मीयता है। आचार्य तुलसी उन महापुरूषों में हैं, जिनका व्यक्तित्व कभी उनसे उपर नहीं हो पाता। आचार्य तुलसी इतने जीवन्त और प्राणवन्त व्यक्ति हैं कि उस आसन का गुरुत्व स्वयं फीका पड़ जाता है। वेष्भूषा में वे जैनाचार्य हैं किन्तु आत्मिक निर्मलता और संवेदन क्षमता से वे सभी मत और वर्गों के आत्मीय बन सके हैं। मैंने उन्हे सदा जाग्रत और तत्पर पाया है। शैथिल्य कहीं देखने में नहीं आया।[6]

मध्यप्रदेश विधान सभा के सदस्य डा.खूबचंद बघेल द्वारा लिखित पत्र की पंक्तियों–''महात्मा गांधी, अरविन्द घोष और महर्षि रमण के पश्चात मैं आध्यात्मिक उँचाई प्राप्त श्रेष्ठ पुरूषों के दर्शन पाने के लिए लालायित था पर मुझे ऐसा लगता था कि शायद उनकी टक्कर का आदमी अब संसार में नहीं रहा। परन्तु गुरुदेव श्री तुलसी को देखने के बाद मुझे प्रतिक्षण यह प्रतीत होता है कि इनकी गणना भारत के श्रेष्ठतम आध्यात्मिक पुरूषों में होनी चाहिए।[7] अपने आपको पूर्णता के साथ अभिव्यक्त करना, चाहे वह कर्म द्वारा हो या वाणी द्वारा या अन्य किसी माध्यम के द्वारा, व्यक्ति की सबसे बड़ी सफलता है।'' आचार्य तुलसी जैसे सहज, पवित्र और पारदर्शी व्यक्तित्व को देखकर ही डा.नगेन्द्र ने व्यक्तित्व की यह परिभाषा दी होगी।[8] अस्तित्व की खोज और उसे पाने की अकुलाहट व्यक्ति को साधना की और प्रस्थित करती है। पूज्य गुरुदेव तुलसी का अनुभव था कि बैचेनी के चरम शिखर पर पंहुचने पर साधना–पथ स्वयं मिल जाता है तथा भीतर छिपे आनन्द, शक्ति और चेतना के प्रवाह का अनुभव सहज हो जाता है। हजारीप्रसाद द्ववेदी के अनुसार जो साहित्यकार अपने जीवन में मानव सहानुभूति से परिपूर्ण नहीं होता है और जीवन के विभिन्न स्तरों को सौहार्द दृष्टि से नहीं देखता, वह किसी बड़े साहित्य की सृष्टि नहीं कर सकता।[9] आचार्य तुलसी करूणा के महासागर थे। उनकी करूणा सम्पूर्ण मानव जाति के साथ जुड़ी हुई थी। उनका स्वप्न था कि ऐसा सघन पुरूषार्थ हो, जिससे सम्पूर्ण मानव जाति करुणा, मैत्री और शांति के धागे में आबद्ध हो सके –

**करे प्रबल पुरूषार्थ सभी में, अभिनव आस्था जागे।**
**जोड़े सबके अन्तर मानस, पो करूणा के धागे।**[10]

विवेकानन्द के शब्दों में–यदि जीवन में अभीष्ट सफलता चाहते हो तो एक आदर्श को लो, उसका चिंतन–मनन करो, उसी को अपने सपनों में पा लो और उसी को अपना जीवन बना लो। अपने मस्तिष्क, मांसपेशियों, स्नायुतंत्र एवं समूचे अंग–प्रत्यंगों को उसी आदर्श के विचार से ओत÷प्रोत कर दो और अन्य विचारों को एक तरफ हटा दो। फिर देखो सफलता कैसे तुम्हारे कदम चूमती है। आचार्यश्री तुलसी का भी यही अभिमत था कि साधक अपने लक्ष्य के प्रति सर्वात्मना समर्पित हो जाता है तो सब कुछ पा लेता है। आचार्य तुलसी ने सांस्कृतिक शब्दों की गरिमा को सुरक्षित रखा है। मां जैसे महनीय शब्द को उन्होनें कहीं भी मम्म था मम्मी कहकर नहीं पुकारा है, अपितु अम्मा, माँ, माई, मावड़ली, मावड़, मायड़, मावड़ी, मातेश्वरी, मांजी, माऊ जैसे सांस्कृति परक शब्दों का ही प्रयोग किया है। मन की चंचलता का समाधान देते हुए आचार्य तुलसी कहते हैं :–

**आए कैसे हाथ में, मन की सही लगाम।**
**उलटी गति का अश्व यह, लेता नहीं विराम।।**
**तन मन के पीछे चले, तो साधक की हार।**
**तन, मन अनुगामी रहे, खुले साधना द्वार।।**

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टीन ने कहा – ''पदार्थों को जानने एवं उनके रहस्य खोजने में मैनें अपना पूरा जीवन लगा दिया लेकिन अब मैं ज्ञाता को जानना चाहता हूँ। जब तक ज्ञाता

को ज्ञेय नहीं बनाया जायेगा,विज्ञान की खोज अधूरी रहेगी। यदि मुझे पुनर्जन्म में मानव–देह मिलेगी तो मैं आत्मा को जानने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाना चाहता हूँ। तब मेरे ज्ञेय का विषय ज्ञाता होगा।'' आंइस्टीन का यह वक्तव्य आत्मबोध की तीव्र तड़फ को व्यक्त करने वाला है। आचार्य तुलसी आत्मबोध को सर्वोच्च प्राथमिकता देते थे।

आचार्य तुलसी की मान्यता है – ''जीवन की सफलता का बहुत बड़ा रहस्य एकाग्रता में निहित है। केवल साधना के क्षेत्र में ही नहीं, शिक्षा, कला, वाणिज्य, विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में सफलता के लिए एकाग्रता एवं तन्मयता की मूल्यवता है। क्योंकि समग्रता में जो शक्ति होती है, वह उसके विभक्त होने में नहीं होती। आइंस्टीन जब अपनी प्रयोगशाला में होते, तब काम में इतने तल्लीन बन जाते कि न उन्हें भूख का एहसास रहता न प्यास का। चित्त भी जब अखंड और समग्र रहता है, तभी वह शक्ति सम्पन्न बनता है। खंडित चित्त की शक्तियों बिखर जाती है और जीवन भारभूत तथा निकम्मा बन जाता है। स्वेट मार्डन का कहना है कि व्यक्ति के असफल और दुःखी होने के दो कारण है–अपनी योजनाओं के लिए पक्के निश्चय की कमी तथा उन पर काम करते समय बार–बार दुविधा या चंचलता का अनुभव। चंचल मन की स्थिति का चित्रण गुरुदेव तुलसी इस प्रकार करते है :–

**चंचल मन ही हर मानव को, दर दर भटकता है।**
**मन पर संयम करने वाला, पग पग पर सुख पाता है।।**

वरिष्ठ पत्रकार जैनेन्द्रजी के शब्दों में ''आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व में मुझे विघटन कम प्रतीत होता है। आचार, उच्चार और विचार में बहुत कुछ एकसूत्रता है। इसी से उनके व्यक्तित्व में वेग और प्रवाह है। सत्य के पांच लक्षण बताए गये है :–

1. कथनी करनी की एकरूपता
2. प्रतिष्ठा एवं आत्मख्यापन की भावना से मुक्ति
3. कृर्तत्व के अहंकार से मुक्ति
4. असत् प्रवृत्ति से बचाव
5. आवेश मुक्ति

पूज्य गुरुदेव के जीवन में ये पाँच बातें सहज रूप से चरितार्थ थी।

अणुव्रत आंदोलन की गूंज गरीब की झौंपड़ी से लेकर राष्ट्रपति भवन तक पहुंची है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद कहते हैं, ''आजके युग में जबकि मानव अपनी भौतिक उन्नति से चकाचौंध होता दिखाई दे रहा है और जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक तत्वों की अवहेलना कर रहा है, वहां ऐसे आंदोलनों द्वारा ही मानव अपने संतुलन को बनाए रख सकता है और भौतिकवाद के विनाशकारी परिणामों से बचने की आशा कर सकता है। आचार्य तुलसी ने कवि–कर्म की अपेक्षा आध्यात्मिकता को ही सर्वोपरि स्थान दिया। इसका प्रमाण है उनकी उत्कृष्टतम कलाकृत्ति ''अग्निपरीक्षा'' का न्यायालय द्वारा निर्दोष सिद्ध हो जाने पर भी पुस्तक को वापिस लेना। कुछ साहित्यकारों और संतों ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए आचार्य तुलसी से कहा, ''आपकी कृत्ति सच्ची है, उत्कृष्ट साहित्यिक कृत्ति है, फिर उसको वापिस क्यों लिया गया। इस पुस्तक को वापिस लेकर आपने साहित्य जगत का अपमान किया है।'' आचार्य तुलसी ने उनको समझाते हुए कहा–मैं पहले संत हूँ, साधक हूँ बाद में साहित्यकार या कवि। इस प्रश्न पर मैंने पहले साधक की दृष्टि से विचार किया, फिर कवि की दृष्टि से। अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए मैंने ऐसा उपक्रम किया है। मुझे नहीं लगता कि मैंनें कोई भूल की है।[11]

आचार्य तुलसी की मान्यता है कि ''शुद्ध चैतन्य का अनुभव साधक को सारी संवेदनाओं से उपर उठा देता है। फिर उसका एक मात्र लक्ष्य होता है–स्वयं को शांति मिले, जनता को

शांति मिले, सारे संसार को शांति मिले और प्राणी मात्र को शांति मिले।'' आचार्य तुलसी कहा करते थे – मैं पांव–पांव चलकर गांव–गांव पहुंचंगा और जनता को जीवन के लक्ष्य से परिचित कराता रहूंगा। मैं तो हर वर्ग के बुरे लोगों का इंतजार करता हूँ। कोई आये तो उनका परिवर्तन एवं रूपांतरण करूँ और अध्यात्म की प्रेरण दूँ। मैं स्वयं पूरे अर्थ में आत्मवान् बनकर अपने धर्म–परिवार एवं सम्पूर्ण मानव जाति को आत्मवान् बनाना चाहता हूँ। चाहे वह ध्यान का क्षेत्र हो या कर्म का। मैं समूह चेतना को जगाना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मुझे जो जागृति मिली है, वह औरों को भी मिले। उनका अनुभव बोलता है कि ''साधनों के प्रयोगों से आंतरिक लय इतनी जुड़ जाय कि बाह्य और अंतर में भेद न रहे। ऐसा करने से हमारी हर क्रिया मुक्ति का कारण बन जायेगी। तब विचार और आत्मलोचन का भेद मिट जायेगा।[12]

उनका एक क्रांतिकारी उद्धरण–मैं मनुष्य की खोज में निकला हूँ। देवताओं का सहयोग मुझे नहीं चाहिए। लोग हर कार्य के लिए देवताओं का मुंह ताकते रहते हैं। क्या हमारे देवता इतने बेकार बैठे हैं कि वे हमारा कार्य करने के लिए दौड़ आयेंगे। मेरा दृढ विश्वास है कि कोई भी देवता और परमात्मा स्वर्ग से हमारा कार्य करने नहीं आयेगा।धरती पर रहने वाले को ही परमात्मा बनना होगा। आचार्य तुलसी की मान्यता थी–

**असतो मा सद् गमय**
**तमसो मा ज्योति र्गमय**
**मृत्योः मा अमृत गमय**

मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो, मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो। उन्होने कहा मैं याचना के स्थान पर पुरूषार्थ को जोड़ना चाहता हूँ। पुरूषार्थ में विश्वास रखने वाले व्यक्ति की भाषा होगी '' मैं असत् से सत् की ओर जाऊँ, मैं अंधकार से प्रकाश की ओर जाऊँ, मैं मृत्यु से अमरत्व की ओर जाऊँ''। यह सत्य है कि कोई भी मनुष्य अतीत और भविष्य से कटकर नहीं जी सकता पर अनावश्यक स्मृति और कल्पना से बचकर अपनी शक्ति का सदुपयोग किया जा सकता है। अतीत की अनावश्यक स्मृति जीवन शक्ति पर जंग लगा देती है। विचारक कृष्णकुमार के अनुसार ''अतीतस्थ मन की दशा एक मानसिक बिमारी से कम नहीं। यह बिमारी सबसे पहले कल्पना शक्ति का नाश करती है फिर धीरे–धीरे व्यक्तित्व की अन्य ताकतों की ओर बढती है। तर्क शक्ति कमजोर पड़ जाती है, लचीले ढंग से सोचना नामुमकिन हो जाता है, सूझबूझ जाती रहती है।''[13]

उनका आत्मबल उनकी इन पंक्तियों से झलकता है,''कहा जाता है कि आज केवलज्ञान नहीं हो सकता। पूर्वों का ज्ञान नहीं हो सकता। क्षपक श्रेणी नहीं ली जा सकती। क्यों? मेरे अभिमत से यह मान लेना सबसे बड़ी दुर्बलता है। वर्तमान में इनकी उत्कृष्ट साधना की जाय तो इन उपलब्धियों को कौन रोक सकता है।'' साधना में सघनता लाने के लिए भावक्रिया का सतत् अभ्यास अपेक्षित है। जीवन की सफलता में भी भावक्रिया का महत्वपूर्ण स्थान है। भावक्रिया का अर्थ है–जिस समय जो काम करें, उसी में तन्मय हो जाना, अपने अस्तित्व को उससे भिन्न नहीं रखना। अतीत का स्मरण होता है, भविष्य की कल्पना होती है और वर्तमान में मन चंचलता से प्रेरित होता है। गुरुदेव ने दर्शन के क्षेत्र में एक नई सोच प्रस्तुत की। उनके अनुसार भाव क्रिया के माध्यम से मन को अमन बनाया जा सकता है क्योंकि जब तक मनन नहीं होता, मन होता ही नहीं अतः भावक्रिया की साधना मन को अमन बनाने की सफल प्रक्रिया है। भावक्रिया का मूल अर्थ है चैतन्य का जागरण और उसके प्रति जागरुकता।

महर्षि विनोद उनकी विशेषता का आकलन इन शब्दों में करते है–''मैने अनुभव किया है कि आचार्य तुलसी ईश्वरीय पुरुष है। उन्होनें ईश्वर का संदेश फैलाने और उसका कार्य पूरा करने के लिए ही जन्म धारण किया है। वे न भूतकाल में रहते हैं और न भविष्य काल में। वे

नित्य वर्तमान में रहते हैं।[14] आचार्य तुलसी कहा करते थे, ''मैं स्पष्ट रूप से घोषणा कर सकता हूँ कि जो व्यक्ति ध्यान का प्रशिक्षण नहीं लेगा, ध्यान का अभ्यास नहीं करेगा, वह अधूरा रहेगा, अक्षम रहेगा और जीवन के किसी महत्वपूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति में सफल नहीं हो सकेगा। **ध्यान साधना के प्रति उनका दृढ़ विश्वास बोलता था कि जो शक्ति संचय,तेज,ज्योति और आनन्द का आविर्भाव ध्यान से होता है, वह अन्य किसी भी अभ्यास साधना से नहीं होता।''** आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में ध्यान से जुड़ी हुई विधा–अनुप्रेक्षा, मस्तिष्कीय धुलाई की प्रक्रिया है। समूह में रहते हुए अकेले रहना बहुत बड़ी कला है।

पूज्य गुरुदेव में बालक की सहजता, युवा की ऊर्जा, प्रौढ की चिन्तन प्रवणता और वृद्ध की अनुभवशीलता थी इसलिए वे जहां होते थे, उनकी साधना स्वयं सुरक्षा कवच बन जाती थी, बुराईयों का तमस कभी उनके आसपास प्रवेश नहीं पा सकता था। **प्रियता और अप्रियता के भाव समाप्त होने के बाद साधक कृतार्थ हो जाता है, फिर उसकी हर क्रिया ध्यान बन जाती है। ध्यान सुप्त शक्ति को जगाने का सशक्त उपक्रम है। पूज्य गुरुदेव की अनुभूति में चेतना का वह लक्षण ध्यान है जिसमें प्रियता, अप्रियता का भाव समाप्त हो जाता है। यही क्षण अप्रमाद का क्षण है, पूर्ण जागरूकता का क्षण है, भावक्रिया का क्षण है। मूर्च्छा की ग्रन्थि को तोड़ने का क्षण है। सुसुप्ति को मिटाने का क्षण है और है अहिंसा का क्षण। ध्यान चेतना के जागृत होने के बाद साधक बाहर रहता हुआ भी अंतर में जीता है। ध्यान के बिना निर्मलता, स्वस्थता और स्थिरता की कल्पना ही असंभव है।**

गुरुदेव तुलसी की स्पष्ट मान्यता थी कि धर्म और सम्प्रदाय अलग–अलग है, एक नहीं है। अध्यात्म और धर्म को एक श्रेणी में रखा जा सकता है। उन्होनें धर्म और अध्यात्म को मंदिर और मस्जिद से निकालकर जीवन व्यवहार में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। उनकी दृष्टि में जो धर्म जीवन–परिवर्तन की दिशा नहीं देता, मनुष्य के व्यवहार में जीवंत नहीं होता, वह धर्म नहीं, सम्प्रदाय है, क्रियाकाण्ड है, उपासना है। वे उन धार्मिकों को देखकर हैरान थे, जो पच्चास वर्ष से धर्म करते रहे किन्तु जीवन में परिवर्तन नहीं आया। उनकी दृष्टि में वही व्यक्ति अध्यात्म की कसोटी पर खरा उतरता है, जो अशांति में शांति को, अपवित्रता में पवित्रता को, असंतुलन में संतुलन को तथा अंधकार में से प्रकाश को ढूंढ निकालता है। लक्ष्य को सफल बनाने में प्रयत्नशील रहो। मन को समाधिस्थ, तन को स्वस्थ एवं वचन को संयत रखो, यही साधना का मार्ग है।[15] यदि आप बदलना चाहते हो तो प्रयोग के पीछे पड़ जाओ, धुन में खो जाओ अन्यथा बदलाव होना मुश्किल है।

आचार्य तुलसी ने कहा, '' हमने अपने जीवन में दो काम करने का लक्ष्य बनाया–पहला काम है–अध्यात्म की प्राचीन संस्कृति को नवीनतम रूप में प्रस्तुति देना। दूसरा कार्य–धर्म और सम्प्रदाय दो है, एक नहीं, इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति देना। सन् 1954 में प्रदत प्रवचन का अंश उनकी तीव्र आध्यात्मिक तड़फ का साक्षी है '' मेरा बहुत वर्षों का एक स्वप्न था, कल्पना थी कि जिस प्रकार–नाटक, सिनेमा को देखने, स्वादिष्ट पदार्थों को खाने में लोगों का आर्कषण है, वैसा ही, उससे बढकर आर्कषण धर्म और अध्यात्म के प्रति जागृत हो। लोगों को धर्म और अध्यात्म की बात सुनने का निमंत्रण नहीं देना पड़े, बल्कि आंतरिक जिज्ञासावश और आत्मशांति की प्राप्ति के लिए वे स्वयं उसे सुनना चाहें तथा धर्म और अध्यात्म को जीना पसंद करें।''[16]

**सलाहकार,**
**जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय,**
**लाडनूं (राजस्थान)**

## संदर्भ सूचीः–


1 आचार्य तुलसी ; विचार के वातायन में–साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, पृ. 59
2 आचार्य तुलसी ; विचार के वातायन में– साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, पृ.42
3 भूतपूर्व लोक सभा अध्यक्ष शिवराज पाटिल के पत्र के माध्यम से
**4** आचार्य तुलसी **;** मेरा जीवन–मेरा दर्शन साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, भाग–8, पृ.197)
5 आचार्य तुलसी ; विचार के वातायन में, पृ. 52
6 आचार्य तुलसी : विचार के वातायन में, पृ. 27

7 मध्यप्रदेश विधान सभा के सदस्य–डा.खूबचंद बघेल का पत्र
8 डा.नगेन्द्र–व्यक्तित्व की परिभाषा
9 साहित्य सहचर–हजारीप्रसाद द्ववेदी, पृ.19
10 अणु. पृ.16
11 आदिवचन–आचार्य तुलसी,पृ.6
12 आचार्य तुलसी के 26 ।2 ।67 के प्रवचन से उद्धृत
13 मन की दशा–श्री कृष्णकुमार
14 आचार्य तुलसी ; विचार के वातायन में, पृ.183
15 आचार्य तुलसी के पत्र, भाग2, पृ.3
16 आचार्य तुलसी के सन् 1954 के प्रवचन से उद्धृत